International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2017; Page No. 01-03

लोक – साहित्य की अवधारणा व क्षेत्र

डॉ0 उत्तम पटेल

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री वनराज आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, धरमपुर, वलसाड, गुजरात, भारत।

सारांश

लोक–साहित्य लोक–संस्कृति अथवा लोक–वार्ता का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि लोक–संस्कृति एक विशाल वट–वृक्ष है तो लोक–साहित्य उसकी एक शाखा है। यदि लोक–संस्कृति शरीर है तो लोक–साहित्य उसका एक अवयव है। लोक–संस्कृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है तो लोक–साहित्य का विस्तार संकुचित है। लोक–संस्कृति की व्यापकता जन–जीवन के समस्त व्यापारों में उपलब्ध होती है तो लोक–साहित्य जनता के गीतों, कथाओं, गाथाओं, मुहावरों तक ही सीमित है। लोक–साहित्य अंग है तो लोक–संस्कृति अंगी है। लोक–साहित्य लोक–संस्कृति का एक भाग मात्र है। लोक–गीत, लोक–कथाएँ, लोक–गाथाएँ, कथा–गीत, धर्म–गाथाएँ, लोक–नाट्य, नौटंगी, रास–लीला आदि लोक–साहित्य से संबद्ध विषय हैं।

मूलशब्द: संस्कृति, शिष्ट, लोक, मौखिक–परंपरा।

प्रस्तावना

'संस्कृति' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। हमारे देश में वैदिक काल से ही संस्कृति की दो अलग–अलग धाराएँ बहती आयी हैं–

1. शिष्ट संस्कृति और
2. लोक–संस्कृति।

शिष्ट संस्कृति उस अभिजात्य वर्ग की संस्कृति है जो बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचा तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद तथा शास्त्र था। इनके साहित्य को शिष्ट साहित्य कहा गया।

लोक–संस्कृति वह है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसका स्रोत जनता थी और बौद्धिक विकास के निम्नतम धरातल पर उपस्थित थी। लोक संस्कृति तो हमारी जीवन शक्ति होती है।[1] प्रो.कृष्णकुमार गोस्वामी के शब्दों में कहें तो–"वास्तव में संस्कृति का संबंध संस्कार से है। इसका अर्थ हुआ साफ करना, स्वच्छ रखना, परिष्करण करना या उत्तम बनाना। जो स्थिति हमें किसी वस्तु या व्यवहार में जीवन सिद्धि के निकट पहुँचाती है, वही श्रेष्ठ या उत्तम कहलाती है। इस कल्याण की साधना ही संस्कृति है। हमारे जीवन के आचार–विचार के परिष्कार का विधान ही संस्कृति है। लोक जीवन के नाना संबंधों में औचित्य का पालन ही संस्कृति है।"[2] तो रजनी पाथरे 'राजदान' के मतानुसार–"किसी भी संस्कृति का संवाहक उसका लोक साहित्य माना जाता है। यह साहित्य पारंपरिक स्वरूप में लोक जीवन से प्रसूत जन सामान्य के आनंद एवम् विषाद की सुर सरिता है, जो हजारों वर्षों से निरंतर प्रवाहित हो रही है।"[3]

लोक–साहित्यः परिभाषाएँ

1. डॉ. इन्दु यादव के मतानुसार–"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, जीवन–मरण, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है उसे 'लोक–साहित्य' कहते हैं।"[4] इस प्रकार लोक–साहित्य वह है जो जनता द्वारा, जनता के लिए रचा गया हो। दूसरे शब्दों में कहें तो लोक सहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। संक्षेप में लोक–संस्कृति और लोक–साहित्य का मूल अत्यंत प्राचीन है। जिसकी धाराएँ प्राचीन काल से ही प्रवाहित होती आ रही हैं।
2. डॉ.हरदेव बाहरी के अनुसार– "लोक का अर्थ संसार, प्रजा और लोग होता है।"[5]
3. डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार–"वास्तव में लोक–साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक–समूह अपना मानता है।"[6]
4. डॉ.मीनाक्षी बोरणा के मतानुसार– "नवजात बच्चे की प्रथम किलकारी की अभिव्यक्ति लोक साहित्य है।"[7]
5. डॉ.सत्येन्द्र के अनुसार– "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[8] लोक–साहित्य के अंतर्गत वह समस्त बोली या भाषागत विशेषताएँ आती हैं जिसमें–**1.** आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों। **2.** परंपरागत मौखिक क्रम से उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और लोकमानस की प्रवृत्ति में समायी हो। **3.** वह कृतित्व हो, किन्तु वह लोकमानस के सामान्य तत्त्वों से ऐसे युक्त हो कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी लोक उसे अपने व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे। 'साहित्य' शब्द के पूर्व 'लोक' अभिधान लगाने के बाद उसका अर्थ होता है–लोक का साहित्य। 'लोक' का अर्थ है–जनता। 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'FOLK' का हिंदी रूपांतर है। अंग्रेजी में 'फोक' शब्द का प्रयोग अशिक्षित, अर्धशिक्षित, असभ्य, अर्धसभ्य आदि वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। विद्वान व्यक्ति 'लोक' शब्द का प्रयोग सरल ग्रामीणों के लिए करते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार– "'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।"[9] 'लोक' शब्द के लिए हिंदी में 'ग्राम' और 'जन' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है. किन्तु इनसे लोक की समग्रता का बोध नहीं होता।

डॉ. पूर्णिमा श्रीवास्तव के मतानुसार– "हिंदी में 'लोक' अंग्रेजी शब्द 'Folk' का पर्यायवाची है। आंग्लभाषी प्रयोग की दृष्टि में Folk

असंस्कृत और मूढ़ समाज अथवा जाति का द्योतक है, पर सर्वसाधारण और राष्ट्र के सभी लोगों के लिए इसका प्रयोग होता है।"[10]

इस प्रकार लोक–साहित्य का बोध एक ऐसे साहित्य से होता है, जिसकी रचना जनता याने लोक द्वारा होती है। इस प्रकार जिस साहित्य की रचना एक जन–समूह द्वारा की जाती हो, उसे लोक–साहित्य कहा जाता है। लोक–साहित्य– उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन–जीवन की प्रत्येक अवस्था– प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। जन–समूह की जो भावनाएँ–हर्ष, विषाद, भय, प्रेम, शोक आदि होती हैं, उनकी सामूहिक अभिव्यक्ति गीत, कथा आदि के रूप में हुई होगी। किसी ने एक पंक्ति की मौखिक रचना की दूसरे ने उसमें एक पंक्ति और जोड़ दी और तीसरे ने तीसरी पंक्ति रच कर गीत को आगे बढ़ाया होगा। इस प्रकार परवर्ती पीढियों ने भी इस गीत में सुधार किया होगा और अनेक लोगों के रचना सहयोग से यह साहित्य प्रकाश में आया होगा, जिसे बाद में 'लोक–साहित्य' कहा गया।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर लोक–साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1. लोक–साहित्य मौखिक परंपरा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होता रहता है।
2. लोक–साहित्य लोक–मानस द्वारा रचित होता है।
3. लोक के द्वारा, लोक के लिए निर्मित साहित्य लोक–साहित्य कहलाता है।
4. लोक साहित्य संपूर्ण लोक का संगी होता है।
5. लोक–साहित्य सरल, सहज और स्वयं स्फूर्त होता है। लोक–साहित्य लोक–कंठ से फूटता है। लोक– साहित्य में लोक मानव हृदय बोलता है।
6. लोक–साहित्य शास्त्रों के नियमों का अस्वीकार करता है।
7. इसमें छंद, अलंकार आदि नहीं होते।
8. लोक–साहित्य पर आदिम सभ्यता, अर्ध सभ्य या सभ्य लोगों या समाजों की भावनाओं, जीवन, रहन– सहन आदि का प्रभाव होता है।
9. लोक–साहित्य का जुडाव मानव के अंतर मन से होता है न कि बाह्य आडम्बर युक्त रूप से।
10. साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए।
11. लोक–साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूति जन्य होता है।
12. लोक–साहित्य किसी जनपदीय बोली के माध्यम से व्यक्त होता है।

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है अतः जनसाहित्य (लोक–साहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है जो साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समाई रहती हैं। अतः यदि कहीं की समूची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोक–साहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। यह लिपिबद्ध बहुत कम और मौखिक अधिक होता है। वैसे हिंदी लोक–साहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास इधर कुछ वर्षो से किया जा रहा है और अनेक ग्रंथ भी संपादित रूप में सामने आए हैं किंतु अब भी मौखिक लोक–साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में असंग्रहित है।

लोक–साहित्य का क्षेत्र

लोक–साहित्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। जहाँ–जहाँ लोक है वहाँ–वहाँ लोक–साहित्य है। आदिम लोगों का तो लोक से घनिष्ठ संबंध था। आदिम जीवन तो लोक–साहित्य का संस्कार–विधाता है। लोक–जीवन का प्रत्येक्ष लोक–साहित्य से किसी न किसी प्रकार संबद्ध रहता है। जिस प्रकार मनुष्य का जीवन बहु आयामी है, उसी प्रकार लोक–साहित्य का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है।

लोक–साहित्य के क्षेत्र के बारे में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है–"लोक–साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है, साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है, उन सबको लोक–साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक, षोड्ष संस्कारों का विधान जो प्राचीन ऋषियों ने किया, विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है, उसका प्रभाव जनसाधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता अतः बाह्य जगत में इस परिवर्तन को देखकर हृदय में उल्लास या आनंद की अनुभूति होती है वह लोकगीतों के रूप में प्रकट होती है। खेतों की बोआई, निपाई, लुनाई के समय भी गीत गाये जाते हैं। अपने पूर्व पुरूषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा–गाकर आनंद प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोताओं के हृदय में वीर–रस संचार करती है। ये गीत लोककथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।"[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार लोक–साहित्य की व्यापकता मानव से जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा स्त्री, पुरूष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े सभी लोगों की सम्मिलित संपत्ति है। इस प्रकार लोक–साहित्य के विषय क्षेत्र में लोक–जीवन, लोक–संस्कृति और लोक–परंपरा, प्रथाओं का सामावेश होता है। तो इसके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक, भाषा–शास्त्रीय जैसे विषयों का समावेश होता है। लोक–साहित्य में भौगोलिक एवम् आर्थिक दशा का चित्रण उपलब्ध होता है। लोक–साहित्य के द्वारा आर्थिक भूगोल का पता चलता है। लोक–गीतों तथा लोक–कथाओं में प्रयुक्त शब्दों द्वारा तत्कालीन समाज की अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है। लोक–साहित्य में समाज के अध्ययन की बहुत सारी सामग्री मिलती है। लोक–कथाओं एवम् लोक–गीतों में समाज का वर्णन अत्यधिक होता है जिससे समाज के मनुष्यों का रहन–सहन, आचार–विचार, खान–पान, रीति–रिवाज, आदान–प्रदान, मान्यताएँ, रूढियाँ, लोक–विश्वास व परंपराओं, उनका पशु–पंखीदृप्रकृति से संबंध, उनकी बोली–बानी आदि का पता चलता है। संक्षेप में कहें तो लोक–साहित्य मानवशास्त्र, भाषा–विज्ञान व समाजशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक व ठोस सामग्री का भंडार होता है। इस प्रकार लोक–साहित्य का ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र से गहरा संबंध होता है।

संदर्भ ग्रर्थ

1. भानावत, महेन्द्र, मधुमती–जुलाई–2006, पृ–41
2. संस्कृति, अंक–११, भारत सरकार, पर्यटन एवम् संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली, मार्च–2006, पृ–80।
3. संस्कृति, अंक–१६, भारत सरकार, पर्यटन एवम् संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली, 2010, पृ–84।
4. यादव, इन्दु, लोक–साहित्य, साहित्य रत्नालय, कानपुर, 2004, पृ–9।
5. बाहरी, हरदेव, राजपाल हिंदी शब्दकोष, राजपाल एण्ड सन्ज़ए दिल्ली, 2000, पृ–727।
6. शर्मा, श्रीराम, लोक–साहित्यःसिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा,1992, पृ–17 से उद्धृत
7. बेरणा, मीनाक्षी, मधुमती–जुलाई 2006, पृ–39।

8. सत्येन्द्र, लोक–साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं., आगरा, 1962, पृ–3।
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, जनपद (त्रैमासिक) वर्ष–1, अंक–1, पृ–66।
10. श्रीवास्तव, पूर्णिमा, लोकगीतों में समाज, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1975, पृ–10।
11. उपाध्याय, कृष्णदेव, भोजपुरी लोक–साहित्य का अध्ययन, हिंदी मंदिर, आगरा, 2008, पृ–15।